बोर्ड परीक्षाओं के खौफ में बचपन

राजीव गुप्ता

परीक्षाएं बच्चों के मन पर न केवल तात्कालिक असर करती हैं बल्कि इसके दीर्घकालिक प्रभाव भी होते हैं। परीक्षाओं के नतीजे बच्चों को अनेक श्रेणियों में बांट देते हैं। परीक्षाओं में बेहतर प्रदर्शन करने वाले आगे बढ़ते हैं और जिनका प्रदर्शन अच्छा नहीं होता वे हार मानकर बैठ जाते हैं। यह लेख परीक्षा प्रणाली के प्रभावों एवं राजनैतिक निहितार्थों पर प्रकाश डालता है।

शिक्षा, विशेषतः विद्यालयी शिक्षा, बच्चे को 'बचपन' की जिन्दगी जीते हुए आसपास के माहौल को समझने की कोशिश का हिस्सा है। खेलते-कूदते बच्चे चिन्ताओं से मुक्त विद्यालय में निर्भयता, समानता, पारस्परिक भाईचारा, भाषा ज्ञान, अंकों की समझ, शारीरिक विकास एवं भावनात्मक सामीप्य का बोध उस 'दोस्त' से सीखते हैं जिसे हमारी आपकी भाषा में शिक्षक कहा जाता है। न्यूनतम बोझ एवं स्वभाविक आकर्षण की विशेषताओं से युक्त शिक्षा बच्चों को व्यापक परिवेश से जोड़ती है। इस कारण प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर तक यदि बच्चों के लिए कोई व्यवस्था जनित शत्रु है तो वह है परीक्षा और अनुशासन के नाम पर निरंकुशता का प्रतिनिधित्व करता भययुक्त विद्यालयी वातावरण जिसे बनाए रखने की कोशिश है। आठवीं कक्षा के स्तर तक किसी प्रकार की परीक्षा प्रणाली को लागू करने का अर्थ बच्चे को रटने की प्रणाली में अभ्यस्त बनाना और अनुकरणात्मकता को उनकी जीवन पद्धति का हिस्सा बनाना है। ये स्थितियां उस बच्चे को भविष्य में नवाचारी बनने से रोकती हैं जिसे वर्तमान व्यवस्था, विशेषरूप से हाशिए पर खड़ी जनता के बच्चों के लिए चाहती है ताकि वे बड़ी संख्या में सस्ते श्रम से जुड़े रहें। बाल शिक्षा से जुड़े अधिकांश शिक्षाविद् इस कारण आरंभिक शिक्षा में परीक्षा को शिक्षा-विरोधी एवं बचपन विरोधी मानते हैं। लेखक की दृष्टि में कक्षा आठ तक परीक्षाओं का संस्थागत प्रचलन न केवल 'बाल-न्याय' के विपरीत है अपितु बाल-अधिकार, बाल स्वास्थ्य आदि का उल्लंघन है। परीक्षा इस स्तर पर भावनात्मक एवं सम्भावित शारीरिक हिंसा है जिसे राज्य बनाए रखने का इसलिए इच्छुक है ताकि (1) बच्चा प्रारंभ से ही शासक शक्तियों के साथ 'भय' को व्यक्तित्व का इस आधार पर भाग बना ले कि यह शक्तियां उसे उत्तीर्ण व अनुत्तीर्ण कर उसके विकास को रोक सकती हैं अथवा उस विकास को निर्धारित दिशा की तरफ ले जा सकती हैं (2) प्रारम्भ से ही बच्चा प्रतियोगिता को मूल्य के रूप में आन्तरीकृत कर सामूहिकता के स्थान पर व्यक्तिवादिता को महत्त्व दे ताकि वह बाजारवाद का हिस्सा बन पूंजीवादी एवं नव-उदारवादी अर्थ तन्त्र को विकास हेतु अनिवार्य मानने लगे तथा (3) परीक्षा की सफलता एवं असफलता को भाग्यवादिता से जोड़कर बालक में प्रारम्भ से ही आक्रामकता, निर्भरता, समर्पण, असहमति व विरोध का नकार जैसे लोकतंत्र विरोधी पक्ष उसके व्यक्तित्व में सम्मिलित हों ताकि दक्षिण पंथी, संकीर्णतावादी एवं अंधविश्वासी विचारों से वह नियंत्रित व निर्देशित होने लगे।

बच्चों के लिए परीक्षा का एक वर्गीय संदर्भ भी है। प्रारम्भ से ही संसाधनों की उपलब्धता, विद्यालय से बाहर परीक्षा केन्द्रित अध्ययन कराने के संस्थान, सूचना प्रौद्योगिकी की उपलब्धता, जो कि परीक्षाओं में उच्चतम स्तर की सफलता के पर्याय बन गए हैं, के महत्त्व को बच्चा समझ ले। निश्चय ही उपरोक्त साधनों की सुगम उपलब्धता उच्च एवं मध्य वर्ग के पास है। अतः परीक्षा हाशिये पर खड़ी जनसंख्या के बच्चों को 'शिक्षा में पिछड़ेपन' का बोध कराएगी और 'सस्ता श्रम से संबद्ध रोजगार ही उनका भविष्य है' के विचार को उनमें स्थापित करेगी जो कि शासक शक्तियां अपने वर्चस्व को बनाए रखने हेतु चाहती हैं।

राजस्थान सरकार द्वारा आठवीं कक्षा में बोर्ड आयोजित परीक्षा के निर्णय और वर्तमान शिक्षा मंत्री का यह प्रस्ताव कि तीसरी एवं

लेखक परिचय

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के समाजशास्त्र विभाग से प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त होने के बाद शिक्षा एवं सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय हैं।

पांचवीं कक्षाओं में भी बोर्ड आयोजित परीक्षा होंगी को उपरोक्त संदर्भों में समझने की आवश्यकता है। यह एक आनुभविक तथ्य है कि जब-जब दक्षिणपंथी एवं संकीर्णतावादी सोच की शक्तियां सत्ता प्राप्त करती हैं, शिक्षा व्यवस्था उनके लिए प्रयोगशाला बनती है। वर्तमान शासक दल आर्थिक विकास हेतु हर प्रयास नव-उदारवादी दृष्टि से कर रहा है। इस दृष्टि का नेतृत्व अमेरिका करता है। पर दूसरी ओर यही शासक दल आठवीं कक्षा तक परीक्षा न लिए जाने के पूर्ववर्ती सरकार के निर्णय को 'अमेरिकन षड़यंत्र' की संज्ञा देता है। अमेरिकन (नव-उदारवादी) नीतियां चूंकि 'गरीब-विरोधी' हैं अतः अमेरिकन षडयंत्र का तर्क उछाल कर गरीबों के साथ यह सरकार 'भावनात्मक ब्लैक मेलिंग' कर रही है। बच्चे यदि आठवीं कक्षा तक परीक्षा के आतंक से मुक्त हैं तो 12 वर्ष की आयु के लगभग तक वह अपनी रुचि का ज्ञान, ज्ञान के अन्य पक्षों, खेलकूद, वैज्ञानिक दृष्टिकोणों, समानता के मूल्य, कला, संगीत जैसे सौन्दर्यात्मक अवयवों एवं संबंधों की सहजता को बिना किसी भय के समझता जाता है। इस स्तर तक परीक्षा का न होना विद्यालय एवं परिवार के मध्य सहयोगात्मक संबंधों को विकसित करता है क्योंकि परीक्षा परिवारीजनों एवं शिक्षकों को भिन्न-भिन्न कारणों से हिंसक बनाती है जिसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष अनुभव बच्चा करता है। विद्यालय में बच्चा 'मित्र समूह' के स्थान पर 'प्रतियोगी समूह' उत्पन्न करता है जो धीरे-धीरे 'हम' बनाम 'वे' के विभाजन से पनपी 'प्रतिस्पद्धी अस्मिताओं' में बदलता जाता है। भारतीय समाज में सक्रिय दक्षिण पंथी शक्तियों जैसे 'बीजेपी-आरएसएस' को ये स्थितियां 'अनुकूल परिवेश' प्रदान करती हैं और इनकी शक्ति की वृद्धि में ऐसे परिवेश में पनपे बच्चे बाद में सहायक सिद्ध होते हैं। परीक्षा रूपी प्रतियोगिता से जूझते इन बच्चों से इनकी मौलिकता, सृजनात्मकता एवं स्वभाविकता को राज्य पर काबिज ये शक्तियां बड़े चतुर तरीके से छीन लेती हैं और इन्हें आलोचनात्मक चेतना के विकास से वंचित कर रोजगार प्राप्ति के प्रयास से जोड़ देती हैं। अ-राजनीतिकरण से जुड़ाव इसका एक अन्य परिणाम है। इस प्रकार के दृष्टिकोण से घिरा विद्यार्थी रोजगार प्राप्ति के आश्वासनों का भ्रमजाल उत्पन्न करने में सक्षम राजनीतिक दलों के प्रभाव में आसानी से आ जाता है और ऐसे राजनीतिक दलों के लिए 'दबाव समूह' के रूप में सक्रिय रहता है। उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के उपरान्त विद्यार्थियों को ऐसे 'अ-राजनीतिक परिवेश' का भाग बनाने की कोशिश प्रारम्भ से हो, ऐसा दक्षिण पंथी दल एवं नव-उदारवाद के समर्थक राजनीतिक दल चाहते हैं। ऐसी शक्तियां साझा सांस्कृतिक विरासत, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, न्याय एवं समानता के मूल्यों की उपेक्षा एवं अवहेलना करती हैं ताकि 'आक्रामक राष्ट्रवाद' की तर्कसंगता को स्थापित करने के लिए 'भावनात्मक स्पेस' अस्तित्व में आ सके। लेखक यह स्थापना इसलिए प्रस्तुत कर रहा है क्योंकि आरएसएस संचालित विद्यालयों की कार्यशैली के पीछे ये उद्देश्य परिलक्षित होते हैं। इन विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली सहायक अथवा समानान्तर पुस्तकों से संबद्ध परीक्षाएं प्रारम्भ में आयोजित कर इन बच्चों को हिन्दुत्व की राजनीतिक अवधारणा से परिचित कराया जाता है। धर्म एवं पारंपरिक संस्कृति पर आधारित यह सोच 'मोरल पोलिसिंग' को वैधता देता है। साथ ही सामाजिक विभाजन की पक्षधरता को व्यापक करता है।

राजस्थान की वर्तमान सरकार विशेषतः शिक्षा मंत्री राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आरएसएस) के सदस्य हैं जिनकी दृष्टि में परीक्षा के माध्यम से सफल हुआ विद्यार्थी ही कुशल एवं सक्षम है। यह 'कम्प्रेस्ड ऐज' का परिचायक है। वास्तव में परीक्षा बच्चों को बचपन व्यतीत करने के पहले 'वयस्क' बना देती है। एक ऐसा 'वयस्क बच्चा' जो परीक्षा के कारण डरकर अपनी मौलिकता खो देता है। पिता की दिन रात आलोचना का शिकार होता है, शिक्षक के सम्मुख मौन रहता है और अपने मित्रों से सब कुछ ऐसा सीखा हुआ छिपाने की कोशिश करता है जो उसकी दृष्टि में उसे अपने मित्रों/प्रतियोगियों से आगे रखता है। विद्यालयों में तीसरी, पांचवीं एवं आठवीं कक्षा में बोर्ड की परीक्षाएं न केवल शिक्षा एवं बाल हित विरोधी हैं अपितु बचपन की हत्या करती हैं। चूंकि निजी विद्यालयों, सीबीएसई एवं आईसीएससी से संचालित विद्यालयों की प्रकृति परीक्षा की दृष्टि से अलग है अतः ये परीक्षाएं लड़कियों, आदिवासी, निम्न जाति, निर्धनों (ग्रामीण एवं नगरीय) एवं शिक्षा के मूलभूत अधिकार का लाभ लेने वाले बच्चों के बचपन की हत्या का हथियार बनेंगी। परीक्षा का भय बच्चों को न केवल असुरक्षित व मनो-भावनात्मक रूप से असंतुलित करेगा अपितू 'ड्राप-आउट्स' संख्या में भी वृद्धि करेगा। राज्य सरकार का यह निर्णय इस कारण हर दृष्टि से नकारात्मक है। ◆